एक और पहचान

विश्वकवि रवीन्द्र
की १२५वीं जयन्ती
के अवसर पर
प्रकाशित

एक और पहचान
सम्पादन
डॉ० प्रभा खेतान

आवरण
मदन सूदन

प्रकाशक
स्वर समवेत
६, तनसुक लेन
कलकत्ता-७००००७

मूल्य
बीस रुपये

मुद्रक : भागचन्द सुराना
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५, रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७००००७

EK AUR PEHCHAN
Poems of distinguished persons in their respective fields
Edited By Dr PRABHA KHAITAN

# पीठिका

रचनाकार के निजी जीवन और उसके कार्य जगत में एक ऐसा दुहरा संबंध है, जो बहुधा पाठकों एवं आलोचकों को आश्चर्य चकित कर देता है। प्रस्तुत संग्रह में जहाँ एक ओर कवि अपने पाठकों का ध्यान बरबस अपनी कृति की ओर आकर्षित करते हैं, वहीं हम उनकी संवेदना की परख और ज़िन्दगी की शिद्दत को गहराई से पकड़ने की चाह को भी समझ पाते हैं। कविताएँ माँगी जाने पर अधिकतर लोगों का एक ही प्रश्न था हम क्यों? हम कोई कवि तो हैं नहीं, अर्थात स्थापित नहीं है, कविताएँ बचकानी हैं, कभी लिखा होगा, आज नहीं लिखते।

कुछ लोगों को मैं इन कविताओं का महत्व बिल्कुल नहीं समझा पाई, कुछ ने वादा किया पर अन्त तक संकोचवश कविताएँ नहीं भेजीं। मैं अपने इन कवि मित्रों की दुविधा समझती हूँ। दुविधा तो तब और भी गहरी हो जाती है जब हम पाते हैं कि अपने-अपने क्षेत्रों में ये बड़े स्थापित लोग हैं। मैं सृजन के उत्स की ओर संकेत करना चाहती हूँ। कोई क्यों कविता लिखता है और फिर

इस संग्रह में जिनकी कविताएँ ली गई है, वे सब अपने-अपने क्षेत्र में स्थापित लोग हैं। मैं चाहती हूँ पाठक इन कविताओं को पढ़ें, मगर एक ऐसी समझ के साथ, अन्तरदृष्टि के साथ अर्थात कविता में कहीं गहरे पहुँचने की कोशिश की इच्छा के साथ। पाठक ऐसी तलहटी को छूने का प्रयास करें, जहाँ पर कवि के व्यक्तित्व को भी वो छू सके, समझ सके। पाठकों से यह हम एक खास समझ और संवेदना की आशा करते हैं। पाठक रचनाकार के, कवि के जितना करीब जायेंगे उतना ही उसके जीवन का वृहत्तर परिप्रेक्ष्य भी समझ पायेंगे। यहाँ सवाल केवल एक व्यक्ति विशेष को समझने का नहीं बल्कि उस प्रक्रिया को समझने का जिसमें जीवन की दूसरी प्रक्रियाओं एवं धरातलों का संकेत भी निहित है। यह वह घनीभूत संवेदना होगी, जो काल की प्रतिक्रिया से उत्पादित होती है।

जहाँ तक सम्पादन का सवाल है, मैंने भरसक अपनी तटस्थता बनाये रखने की चेष्टा की है, मैंने मूल्यांकन की चेष्टा ही नही की क्योंकि प्रश्न उठता है कि कविताएँ इन्होंने क्यों लिखी? कुछ टुकडों का साहित्यिक महत्व न भी हो तो मानवीय महत्व बहुत बडा है। ज़िन्दगी में कही कुछ घटता है, रोज़ रोज़ के हादसे होते हैं और संघात के दौरान संवेदनशील मन जब और गहरे डूबता है तो व्यक्ति कविता लिखता है। हम इन कविताओं में पाते है एक बोध का परिचय और एक त्रासदी का नैरन्तर्य।

कविता क्या ज़िन्दगी का दर्पण है? वह आईना, जिसमें हम अपनी वास्तविक तस्वीर देखते हैं। हम यदि इसे आलोचनात्मक आईना कहे तो अतिशयोक्ति नही होगी। यह ज़िन्दगी के प्रति, उसकी शिद्दत के प्रति एक मासूम लगाव है, सारे नारों से परे, खेमेबाजी से दूर। हम देखते हैं कि कैसे हमारी मौलिक मगर कच्ची अनगढ़ संवेदनाएँ कविता में छलक उठती हैं। इन कलाकारों

ने अपने क्षेत्र में स्थापित मूल्यों के खिलाफ कुछ नया कहने की कोशिश की है। इनमें विनय है किन्तु इसके साथ अपने अहम् के प्रति गहरा अभिमान भी है। आज के इस त्रासद वातावरण में केवल विनय से कोई क्या परिवर्तन लायेगा ! आज एक अन्धी ज़िद की जरूरत है, यही वह अन्धी ज़िद है, जिसके सहारे हम अपने को काम में डुबो देते हैं।

क्या कविता लिखना सिखाया जाता है ? क्या इसका प्रशिक्षण सम्भव है ! शायद नहीं लेकिन इतना मैं कह सकती हूँ कि कविता लिखना व्यक्ति स्वयं सीखता है, कोई भी अच्छी कविता केवल भीतर से नही उपजती, कविता मेहनत भी माँगती है, तराश भी चाहती है। यह संग्रह इस बात का सबूत है कि बीज रूप में सम्भावना होते हुए भी अपेक्षित तराश के अभाव में कुछ कविताओं को कला का स्तर नही पाने दिया है। जहाँ तक आवेग एवं भावनाओं का सवाल है, वह पूरी तरह इनमें विद्यमान है लेकिन कविता लिखना भी एक कला है, इस कला को निखारने की भी एक प्रणाली है, जिसको समय एवं अनुभव के दौरान कवि स्वयं विकसित करता है। "एक और पहचान" का उद्देश्य व्यक्ति संवर्धना नहीं जैसा कि कुछेक पाठक सोच सकते है। यह सही है कि हम व्यक्ति को पहचान रहे हैं लेकिन साथ ही यह भी पहचान रहे हैं कि अनपढ कविताएँ कैसी होती हैं, कवि एक निजी उद्देश्य, व्यक्तिगत प्रतिमान बढता है लेकिन अपने लिये नहीं, समाज के लिये।

आज की बहुत सारी कविताओ में सहजता का स्थान कृत्रिमता और बनावट ने ले लिया है। ओढ़े गये एहसास, उधार विश्वास और संवेदनाओं की बासी प्रस्तुति कविता को विकासशील परम्परा से काट कर एक कृत्रिम अलगाव देते हैं। यही कारण है कि आज के कवि के सामने जातीय कथ्य के साथ ही नए बिम्ब और प्रतीको की खोज की चुनौती मौजूद है। इस चुनौती के

स्वीकारते ही समकालीन कविता की सही भाषा की खोज का सवाल भी उठ खड़ा होता है। महान कवि तो वह होता है जो अपने युग के दिये गये कन्टेन्ट को पूरी तरह व्यक्त कर दे, इतना कुछ दे दे कि परवर्ती पीढ़ी या तो उसी बात को दोहराती हुई लगे या फिर उसी बात को नये तरीके से कहने की प्रणाली का विकास करे। काव्यात्मक परिस्थिति के लिये सचेत होने के क्रम में कवि को अभिव्यक्ति के अन्य सभी माध्यमों के बहशीपन एवं आक्रामक रुख को समझते हुए मानवीय लालित्य की खोज की चेष्टा भी करनी पड़ती है। इसके लिये चीज़ों के प्रति काव्यात्मक पहुँच एवं निष्ठा की मासूमियत का बना रहना ज़रूरी होता है। व्यक्ति साधारण हो या असाधारण लेकिन आज की इस तेज़ रफ्तार दौड़ती हुई ज़िन्दगी में मनुष्य की आन्तरिक सत्ता को बचाने के लिये कविता लिखना या कविता के प्रति रुचि रखना ज़रूरी हो जाता है।

अर्थ और यंत्र के दोहरे दबावों में पिस रही आज की कवि-चेतना अगर यहाँ संग्रहीत रचनाओं में कलात्मक आत्म विस्फोट का स्तर नहीं प्राप्त कर पाई है तो केवल इसीलिए कि इन रचनाकारों ने अपनी रचनात्मक-सम्भावनाओं के भरपूर उपयोग के लिए दूसरी विधाओं का वरण कर लिया है। सीमाओं और सम्भावनाओं के सही एहसास के बावजूद इन्हें यहाँ प्रस्तुत करती हुई मैं आश्वस्त हूँ कुछ सही सम्भावनाओं की ओर आपका ध्यान खींच पाने के प्रति। मुझे आश्चर्य नहीं होगा, यदि भविष्य में सभी रचनाकार या इनमें से कुछ रचनाकार हिन्दी कविता को अपनी ताज़ा और तेजस्वी रचनाशीलता का योग देने के लिए फिर सक्रिय हो जाएँ। उस क्षण की प्रतीक्षा में मैं आप सबको भी आमंत्रित करती हूँ।

प्रभा खेतान

एक
और
पहचान

अरुण चोपड़ा

**अरुण चोपड़ा**

जन्म : शिमला, २८ सितम्बर १९४२

शिक्षा : शाहजहाँपुर, लखनऊ विश्वविद्यालय। लखनऊ से चित्रकला का कोर्स। पढ़ने, लिखने, तस्वीरें बनाने का शौक। १९६६ से पेशेवर कमर्शियल आर्टिस्ट।

सम्प्रति : उच्चकोटि की सीनोयोग्राफ़ी प्रिन्टिंग यूनिट "इन्डिगो आर्टस्" से जुड़ाव। डिज़ाइनिंग में नेशनल पुरस्कार प्राप्त। "आश्रय" फिल्म का निर्माण। "आश्रय" भारत से मास्को फिल्म फेस्टीवल में भेजी गयी—समीक्षकों द्वारा प्रशंसित।

स्वभाव : एकांतप्रिय।

## रात



आकाश में चटखीले
रंगों का शोर-गुल
फिसल कर गिर गया
शाम का सूरज
नदी के उस पार।

फीकी गुलाबी रोशनी
के पीछे पीछे
बैंगनी हवा।

फ़िर,
बेचारी शाम का
गला घोंट दिया
अंधेरे ने

बेशर्म—
तवायफ़ की तरह
इतरा के बैठ गई
स्याह रात—
दुनिया के कोठे पर। *

## कहानी



ज़िक्रे-ज़िन्दगी के पन्ना
को पलट के लगा
यह कहानी तो
किसी और की है।

अतीत की चादर में मुँह छिपाए
बैठी हैं जानी-पहचानी
आकृतियाँ, दूर बहुत दूर,
गहरी खाई के उस पार।

बकाया सफ़र अब
अकेले ही तय करना होगा
यह एहसास, दोस्त बन,
हमदर्दी की नाकाम कोशिश
में है मशगूल।

इस बेतुकी कहानी में
जड़ाऊ हैं कई दर्दों के नग,
कई चोटों के रिसते घाव
खोटे सिक्कों की पूँजी
किस काम की ?

याद रख, दोस्त,
गिरवी रखी ज़िन्दगी भी
तो किसी और की है। *

## सुबह की सैर



स्थिर जल
तैरती टूटी टहनियाँ
निढाल पत्तों
की परत
हरी काई की तह
अलसाई जलनलिनी
ऊंघती झील को
प्रभात ने चूमकर
जगाया।

छोटी भूरी चिड़ियों ने
उड़ान से अंगड़ाई ली
काले कौवों ने मंडराते हुए
बनाया मेहराब।

काँव काँव से जमा हो गई भीड़
एक लाश बेशर्मी से
सूखी टहनी की तरह
तैरती रही।

सोचा होगा,
ऐसी सैर पर चलो
जहाँ से लौटना ही
ना पड़े। *

## आदिम तपिश

●

इकहरे शरीर से लटकी
सूखे काठ की दो टाँगें
टाँगों से जुड़े एक जोड़ी जूते
जूतों में घुसे दो पैर
पैरों से चिपके रबड़ के दो पैडल।

हाँफता हाँफता शरीर कभी
पहियों को, कभी धूप को कोसता
कोसों, तय करेगा।

मंदिर, सिनेमाघर, थाना, अस्पताल,
स्कूल, कोतवाली के फासले
छिल्लड़ में बदल जायेंगे।

दिन की मेहनत का पसीना
रात को अपने मुआवज़े की माँग करेगा
ताड़ी खाने में माँ बहन की तीखी
नमकीन गालियाँ
किसी शरबती फिल्मी धुन में घुल जायेंगी
सुलगती बीड़ी की बू से
माँसपेशियों की थकान हो जायेगी बर्दाश्त
मैल कुचैली लुंगी में
पखुड़िया पसारेगा चमड़े का फूल।

पैरों की फुर्ती, टाँगों से गुज़र,
कमर तक पहुँचते पहुँचते हो जायेगी ठोस
और
आदिम तपिश में पिघलता शरीर
मुट्ठी में बर्फ बन, नींद की ठंडक
से सिकुड़ जायेगा। ❀

## ठौर



रूठे दिन
नाराज़ रातें
सुबह के सूरज के तेवर
दोपहर की, धूप की
फटकार
और शाम भी
खुटक मिजाज़ ।

किस पहर
किस शहर
में ढूंढते हो ठौर !

## चहलकदमी



लैम्प पोस्ट से टपकती
रोशनी
गुलमोहर के पेड़ों से सटे
साये
चितकबरी सड़क
सुनसान

अपनी मंज़िल से नावाकिफ़
अन्दरूनी अँधेरे से
जूझते आदमी की
बेमानी चहलकदमी

यरबस…
कदम रुक गये
सफेद चादरों से घिरे
मकान के सामने

कल ही नाती-पोतों की
खिलखिलाहट होड़ लेगी
गमलों में लगे फूलों से
पूरी शोखी से एक नया
दौर शुरू होगा।

चलो, इस इंसान की
चहलकदमी तो हुई ख़त्म
एक ज़िन्दगी तो
सुर्ख़रू हुई !

## उम्र



ख़ुशियाँ
छूते ही तो
मुर्झा जाती हैं
छुई मुई की तरह।

सन्नाटों में गूँजता है दर्द
बेसाज़ तरन्नुम की तरह।

रोज़मर्रा के फुटकर
गुनाहों के निशां
शर्मिन्दा पेशानी पे
बैठ जाते हैं
झुर्रियों की तरह।

उम्र भर का लेखा-ज्योरा
कुछ माने रखता है क्या ! *

## लिफ़ाफ़े



अखबार की यह
कतरन तुम्हारे लिये
ही कीमती है।

तुम्हारा दुख, तुम्हारी व्यथा
सिर्फ तुम्हारे लिये
सच है। एक डरावना सच।

छोटी सी खबर
पढ़ लेंगे कुछ लोग
सरसरी निगाह से
और शायद क्षण भर
के लिये शोक-ग्रस्त भी हों।

तुम्हारे तो सारे आईने
चिटख गये—
डगमगाये, लड़खड़ाये
तुम्हारे पाँव
यह एहसास तो सिर्फ
तुम्हारा है।

दुनिया के लिये एक
छोटी सी शोक विज्ञप्ति
का कोई महत्व नहीं
रद्दी काग़ज़ों में बिक जायेगा
तुम्हारा निजी शोक
पंसारी की दुकान के लिये
बन जायेंगे कुछ और
लिफाफे। ●

## सातवीं सिगरेट की दास्तान

●

( यह लिन्ड्से स्ट्रीट है
और, यह मेरी पहली सिगरेट का पहला कश है । )

राहगुज़र, देख तो ले, मेरी स्कर्ट के पीने-पीने
डालिहा कैसे महक रहे है
( यों सच है, सच्चे डालिहा न कभी महक हैं, न कभी महकेंगे
सफ़ेद धुली हवा के संग न कभी बहकेंगे· )
यह सस्ते सेंट की और भी सस्ती गन्ध ।

हैरिंग्टन स्ट्रीट ·····( दूसरी सिगरेट )
इस लैम्पपोस्ट की बेरौशन, बेशरम, बदतमीज लौ के तले
मैं सडक अगोरती नंगी खड़ी
( सिर्फ़ ज़िन्दा हैं आँखें, है एक लाश पडी । )
मगर, कौन लेगा मुझे ? कौन खरीदेगा मुझे ? कौन ?
गोरी-चिट्टी चाम का कोई साहब ?
या, कल जैसा ही कोई काला भूत ?

जीसू, तारनहार, ब्लेस भी !
आज किसी गोरे साहब को भेजना
चाहती हूँ अपने लिए दो छन की खुशियाँ सहेजना ।

किड स्ट्रीट···( तीसरी सिगरेट का अधजला टुकडा
उँगलियाँ जलाने लगा · फेंक दिया )
गलबहियों के सौदागर,
तुम्हारी हविस की आग में अपना यह अधजला शरीर
मैंने झोंक दिया ।
···मन होता है सौ फन की नागिन बन तुम्हे डँस लूं
तुम्हारी छटपटाहट से जी भर लूं, हँस लूं
पाँव तले पीसूँ तुम्हारे अंग अंग

मसलूँ !

पार्क स्ट्रीट···( चौथी सिगरेट ? नही, अभी नहीं ! )
आज कही कोई नही मिला
जिस्म पर चन्द फफोलों का ( भी ) फूल नहीं खिला···
क्या अस्वीकृत तिरस्कृत ही लौट जाऊँगी ?

कैमक स्ट्रीट पर मैं छठवी सिगरेट फूँक रही हूँ ।
कौन ? यह कुँजडा ? आखिर यही· ····
"पचास रुपये ? नही, पन्द्रह ।" "क्या ? नही, नही, नो !"
"नो की बच्ची ·चल, ले लेना बीस ।"
"टैक्सी···"
( कहाँ गये डालिहा के महकते फूल ? पाउडर की गंध ?
कहाँ गये, कहाँ गये शाम के सुन्दर सपने ? )

उफ ! सूअर ने पी है देसी शराब ·
दुर्गन्ध और पायरिया, पायरिया और पसीना
मुश्किल है इस अँधेरे कमरे में भी जीना
मुश्किल है· ·ले ले, मुझे ले ले
सामने के सारे बटन खोल दिये हैं ।
यह झूल आयी बेडौल छातियाँ·· नोच ले ।

रुक मत, सीढ़ियों से उतर कर चला जा, नीचे शहर है
नीचे जन्नत है । सिर्फ इस कमरे पर खुदा का कहर है, चला जा···

निष्प्राण ! रह गयी हूँ किसी सूखे पेड की टूटी हुई डाल
जीसू, तारनहार, मुझसे पूछोगे मेरा हाल ?
बिस्तरे की सिलवटो में मुचडी पडी हूँ
कोख की झुर्रियों में सिकुडी पडी हूँ
फर्श पर फैले दूध की तरह बिखरी···
टूटे·हुए काँच-सी बिखरी पडी हूँ

बिस्तरे पर पड़ी-पडी निढाल, मैं सातवीं सिगरेट पीती हूँ !
( ज़िन्दगी फिर भी ज़िन्दगी है,······जीती हूँ ! ) ●

गोपाल कृष्ण सराफ़

## गोपाल कृष्ण सराफ़

जन्म : १० जनवरी, १६२४

शिक्षा : एम० बी० बी० एस०, डी० ओ० ( लन्दन ), ज़ेड० ओ० ( वियेना ) फेलोशिप ( इन्टरनेशनल कॉलेज आफ सर्जन्स )

कृतियाँ : पाँच कविता-पुस्तकें प्रकाशित, रिमझिम, एक टुकड़ा धूप, गूँगी आँखें, बंगला और अंग्रेज़ी में चुनी हुई कविताओं के दो अनुवाद-संग्रह प्रकाशित

विशेष : १६४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन में सक्रिय हिस्सा, प्रथम अध्यक्ष-आगरा मेडिकल कॉलेज स्टूडेन्ट्स यूनियन ( १६४८ ) गूँगों और बहरों का विद्यालय, अन्ध विद्यालय और कुष्ठ-चिकित्सालय गोरखपुर के संस्थापक-सदस्य, गोरखपुर विश्व विद्यालय की सीनेट के भूतपूर्व सदस्य, १६६४ से कलकत्ता के सार्वजनिक और सांस्कृतिक क्रिया कलापों से घनिष्ठ सम्बद्ध, लायन्स इन्टरनेशनल प्रेसिडेण्ट द्वारा पुरस्कृत, विश्व लायन्स मूवमेण्ट से सम्बद्ध, अनेक निःशुल्क नेत्र चिकित्सा-शिविर का संचालन, १६५० से १६८५ तक देश के पूर्वी सीमांतों में दूर-दूर तक अनेक निःशुल्क नेत्र-चिकित्सा शिविरों में अग्रणी भूमिका। पश्चिम बंगाल उडीसा, अरुणाँचल, अन्डमान और निकोबार की सरकारों द्वारा निःशुल्क नेत्र-शल्य चिकित्सा कार्यक्रमों के लिए आमंत्रित और प्रशंसित। १६७४ में पेरिस और १६७८ में जापान में अन्तर्राष्ट्रीय नेत्रचिकित्सक सम्मेलन में शोधपत्रों की प्रस्तुति। कई बार विदेश यात्रा।

१६८२ में भारत के राष्ट्रपति द्वारा पद्मश्री उपाधि से अलंकृत। २० दिसम्बर १६८५ को कलकत्ता के शेरिफ़ पद पर नियुक्त।

## सीढ़ी-कथा



जब तुम
दलदल में फँसी
मैं
सीढ़ी बन कर आया

तुम
ज्यों-ज्यों
पग रखती गई ऊपर
सीढ़ी धँसती गई
दल-दल में क्रमशः

तुम
पहुँचती गई ऊपर
मैं
धँसता गया
दलदल के भीतर।

## निकटता



सीमा तक आकर
चुभ गई निकटता
बन गया मैं
एक मात्र अधिकारी
तुम्हारे आँसुओं का

जो दूर थे तुम से
उन्हें मिले
तुम्हारी खुशियों के क्षण

याद आती है तुम्हारी याचक दृष्टि
याद आते हैं जादुई संकेत
टीसती हैं छिपी मुस्कानें
पुलकित करती है उन्मुक्त हँसी

बह गया बहुत कुछ निकटता की याद में
और मैं असहाय भोक्ता हूँ
एक नए अजनबीपन का।

## इन्द्र धनुष



अकेलेपन के अँधेरे में
मेरे हृदय के सतरंगी तार
खो गये थे

एक दिन
किसी सुनहली किरण ने
उन्हें छू दिया
और पल भर में तन गया
मन के आकाश में
एक सुन्दर इन्द्रधनुष

खोए हुए रंगो को पाकर
हर्ष से विभोर
गर्व से उन्मादित
उमड़ उठा मेरा मन
अचानक किरन ढल गई
लुप्त हो गया इन्द्रधनुष
बरस पडे झर-झर कर मेघ। *

## दूसरी धरती



काश
मेरे पास
बहुत-सी धरती
बहुत से आकाश
और बहुत से सूरज चाँद होते

जब कोई धरती चुभने लगती
मैं दूसरी धरती बिछा देता
जब नक्षत्रों की व्यवस्था कष्ट देती
मैं उन्हे शतरंज के मोहरों की तरह
नया क्रम देता

जब इस धरती वाले चुभने लगते
मैं दूसरी धरती बिछाकर
दूसरा आकाश तान कर
सुख की नींद सोता । ❀

## नेत्र चिकित्सक का दर्द



कल सारी रात
मैं चिंता करता रहा
उसकी
डर है जिसकी दृष्टि खो जाने का

क्यों टूटता है मेरा दिल
किसी और की दृष्टि गुम हो जाने के डर से ?

न तो कर्त्ता हूँ मैं
न कारण

मैं तो हूँ मात्र एक साधन
क़ैद पेशे की कारा में

क्या पर्याप्त नहीं है
दुखी होने के लिये
मेरा अपना ही दुख ! *

## रेंगता रोमान्स



सहन नहीं होती सीधी तेज़ धूप
अच्छी लगती है
जब वह उगती है
रंगीन शीशों से छन कर
वातानुकूलित कक्ष में।

बड़ा कष्ट देती है
मेरे दरवाज़े पर नारे लगाती भीड़
अच्छी लगती है अखबारों में छपी
मार-पीट की खबर

संकुचित करता है
तुम्हारा स्पष्ट प्रस्तावित शरीर-संबंध
किन्तु अच्छा लगता है
रेंगता
रोमांस। *

भँवरमल सिंघी

## भँवरमल सिंघी

●

जन्म : ६ अगस्त, १९१४
बड़गाँव, जि० जोधपुर ( राजस्थान )

शिक्षा : बी० ए० ( आनर्स ) काशी विश्व विद्यालय,
एम० ए० ( हिन्दी ) कलकत्ता विश्व विद्यालय

विशेष : स्वाधीनता आन्दोलन और समाज सुधार आन्दोलनों में सक्रिय हिस्सा। कई बार कारावास। कई सामाजिक संस्थाओं का निर्माण।

जयप्रकाश नारायण, डा० राममनोहर लोहिया और सीताराम सेकसरिया से गहरी आत्मीयता।

प्रथम पत्नी के देहांत के बाद एक बाल-विधवा सुशीला सिंघी से विवाह।

कृतियाँ :

१ "हंस" में गद्यकाव्य का प्रकाशन ( १९३६ )
२. गद्य-काव्य संकलन "वेदना" का प्रकाशन ( १९३७ )
३. देश की अग्रणी पत्रिकाओं में सामाजिक समस्याओं पर चिंतनशील लेखों का प्रकाशन।
४. "भग्न हृदय" पुस्तक का प्रकाशन ( १९६१ )
५. मारवाड़ी समाज : चुनौती और चिंतन" पुस्तक का प्रकाशन ( १९६८ )
६ सीताराम सेकसरिया अभिनन्दन ग्रंथ का सम्पादन ( १९७४ )
७. कई पत्रिकाओं का सम्पादन।
८ लिफाफे और लिफाफे (व्यंग्य ललित निबंधों का संग्रह) १९८५

विशेष : अगस्त १९८४ में अभिनन्दित, अभिनन्दन ग्रन्थ ( सम्पादक—डा० प्रतिभा अग्रवाल और डा० कमल किशोर गोयनका )

## आकुल-स्पन्दन

●

नीरव पीडा के प्रागण में, जीवन तरु झुलसा जाता।
संसृति के कम्पित पथ में, जीवन का रोदन गाता।
कब होगा वह विपण्ण विस्फोट, जिसका यह स्वागत कम्पन।
कह न सको तो बिखर पडो, अन्तर के आकुल स्पन्दन।

जीवन है मादक गरलामृत, शक्ति नही कैसे पीना।
कर प्रकम्प से टूट जायगा, मद-भीना जीवन-सपना।
किस दिन होगा वह दिव्य विहान, जब होगा मर्म विहाग।
कह न सको तो बिखर पडो, जीवन के आकुल अभिशाप।

शून्य निशा में वहता जाता, कहाँ मिलेगी दीप शिखा ?
नई तूलिका नई रंगीनी, रँगी न जीवन-अभिलाषा।
अस्थिर लहरो में जीवन खोता, आशा का बुदबुद रहता।
पर इस अस्थिर बुदबुद में भी, जीवन आँख मिचौनी करता।

कह न सको तो बिखर पडो, अन्तर के आकुल स्पन्दन।

## मिट्टी का दर्शन



आत्मा अमर और मिट्टी नश्वर· ·
यह बिना देखे का दर्शन बिल्कुल झूठा है !

आत्मा की अमरता कब, किसने देखी !
मिट्टी को, किन्तु, सदैव हमने देखा।
मिट्टी में मानवता का दर्शन देखा…
जीवन, मिट्टी की पैदाइश से पोषित ;
विभव, मिट्टी के महलों में सुरक्षित ;
धर्म, मिट्टी की मूरत में पूजित,
सत्य, मिट्टी के उर की पीड़ा में संचित,
मृत्यु, मिट्टी के अपमानों से कुंठित !

मिट्टी सब-कुछ, मिट्टी अमर,
विलय नहीं उसका होते देखा,
मिटी हुई मिट्टी को फिर से रूपायित होते देखा,
युग-पद-चापों की मिट्टी से इतिहासों को मिटते देखा,
पर धरती को हँसते-हँसते अचला देखा !

संघर्ष, तूफान, प्रलयंकारिणी विभीषिका से
सब-कुछ मिट्टी में मिलते देखा, ( पर )
मिट्टी के बल पर मानवको जीते देखा।

जो कुछ है, मिट्टी का है,
सबकी जड़ मिट्टी में है।
मिट्टी के वरदानों में निर्माण खड़ा है,
मिट्टी के उर की पीड़ा में संहार छिपा है !
मिट्टी ही बुनियाद
महल और मीनारों की,
मन्दिर और मस्जिद की
और मानव की मानवता की।

जो पैर नहीं रखते मिट्टी पर,
उनकी मानवता में संशय है !
मिट्टी का होकर जो मिट्टी के साथ नहीं,
मिट्टी का विप्लव उसको ललकार रहा,
मिट्टी का दर्शन युग-परिवर्तन को देख रहा,
मिट्टी की जय, मिट्टी के गीत नई राह पर दौड़ रहे ! *

## प्रश्न-चिन्ह



मैं देख रहा इतिहास अपना,
पढ़ रहा पृष्ठ, जिन पर अंकित हास्य-रुदन मेरा ;
जीवन के चरण चले हैं जिन पर
सुख दुख की उन पंक्तियों में कुछ खोज रहा,
तूफानों का गर्जन बोल रहा, संघर्षों के अक्षर उभर रहे,
पृष्ठ पलटता जा रहा
अक्षर देख रहा, शब्द पहचान रहा
पर, अर्थ बदलता जा रहा,
लिखा जो अपने उसे मिटाना आज चाह रहा
मिट चुका जो उसको लिखने जा रहा,
मिट अमिट की आँख-मिचौनी खेल रहा।
बाधाओं से टक्कर लेते इतिहास लिखता जा रहा,
गौरव-दीप जलाता जा रहा

कीर्ति-स्तम्भ पर जय-पताका उड़ाता जा रहा,
पद-चापों के नीचे पड़े हुए अवरोधों की
विवशता पर हँसता चला जा रहा।
जीवन में कर्तृत्व का अभिमान लिए,
अभिलाषा के अभिसार लिए,
साहित्य की आभा से दीप्त
कला की अभिव्यक्ति से मुखरित
मैं देख रहा इतिहास अपना,
पर, देख रहा पृष्ठ-पृष्ठ पर, शब्द-शब्द पर
प्रश्न-चिन्ह एक बड़ा।
जिसके नीचे इतिहासों का रहस्य छिपा,
जीवन की सारी अभिलाषाओं पर अभिमानों पर
प्रश्न-चिन्ह वह देख रहा। ●

शृंखला-गीत



तुमने बाँधा मुझसे जनको,
बाँधलिया मुझको उनने अपने प्राणोंके गीतों मे,
यदि न मैं यह अवसर पाती,
वंचित रह जाती इन महाप्राणों के दर्शन से ।

मुझे नहीं इंकार इनका बंधन बनने से,
मुझे नहीं प्रतिवाद इनके चरणोंमें लिपट पड़े रहने मे,
तुम बाँधते मुझसे इनको, मैं गीत इन्हीं का गाती !
तुम अभिशाप समझकर देते इनको,
मैं इनका वरदान बनी जाती हूँ !
तुम मेरी जड़तासे इनको बाँध रहे,
स्वयं ये मेरी जड़ताके बंधन भी हैं खोल रहे !

सच, मैं आभारी हूँ !
बंधन न यदि हो पाती मैं इनके पैरोंका,
खुले बंधनों की कविता का अलंकार बन पाती क्योंकर !
बंधनके गीतों मैं महाकाव्यका प्राण सजा पाती क्योंकर !
बंदीगृहमें मुक्तिका त्योहार मना पाती क्योंकर !
शृंखल जीवन को धन्य बना पाती क्योंकर !
सदा जो बँधने को तैयार जन-जीवनका बंधन मोचन करने को,
उनके बंधनकी झंकारों में
मुक्ति का नव स्पन्दन ले जो नाच रहे,
उनके पैरोंकी पायल बननेका सौभाग्य मिला होता क्योंकर !

तुमसे बंध कर, मुझसे बंध कर,
वे युगके नव वातायन खोल रहे ।
बंधन लेते, मुक्ति देते,
बंधन में मुक्तिका शृंगार बिछा,
मुक्तिमें बंधनका उपहार सजा,
क्यों न करूं मैं गर्व उन चरणों का
युग-युग से जो मुक्ति का विस्तार बढ़ाते जाते है । ❁

## अणुका आह्वान



मै अणु  सृष्टिका लघुतम कण, विरूप, अदृश्य,
किन्तु जगतीतलका मूल आधार।
धरा और आकाशके मध्य मै ही शक्तिका मूल विन्दु
निर्माण में, सहारमें।

अणुसे अपार वना, मानवकी समृद्धिके लिए
मै सृजन में खडा था  अप्रकट, अज्ञात।
मै अणु  सृष्टिका लघुतम कण
हुआ हूँ प्रकट आज विद्रोही वन
जगतीतल पर विद्रोह वरसाने।

जड अणु वना है विद्रोही
चेतनाको जगाने, जडताको मिटाने, गतिका चलाने,
युगको हिलाने  युगान्तर को लाने।
सृजन ही वना है आज विद्रोही
सहारके लिए, नव-सर्जनके लिए।

मैं अणु  सृष्टिका लघुतम कण
प्रकट हुआ हूँ युगको आह्वान देने
परिवर्त्तन का, जो अटल है नियम जगतीका।
नहीं चलेगा यह सव-कुछ समाजका, धर्मका, राज्यका
जो वन गया है जड, गया है सड।
नवजीवनका उठा है आह्वान लघुतम के विद्रोह में।

लघुतम, लघुतम वना है आज सहारक
क्योंकि जीना उसे है,
है लघुतमका विद्रोह आज
लघुतम की जीवन-रक्षा के लिए। *

विष्णुकान्त शास्त्री

# विष्णुकान्त शास्त्री



| | |
|---|---|
| जन्म | : २ मई १६२६ |
| कर्म | : १६५३ से कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापन। |
| सम्प्रति | : आचार्य, हिन्दी-विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय सदस्य, राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति भारतीय जनता पार्टी, अध्यक्ष, अनामिका। |
| | सम्पादक—रस-वृन्दावन ( धार्मिक पत्र ) बांगलादेश के मुक्तियुद्ध के सहयोगी, सूरपंचशती-समारोह, सूरीनाम ( दक्षिण अमेरिका ) में भारत सरकार के प्रतिनिधि, १६७६ में सूरीनाम, गियाना, ट्रिनीडाड, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, इंगलैंड, फ्रास, पश्चिम जर्मनी, इटली में भ्रमण। |
| प्रकाशित पुस्तकें | : |
| मौलिक | : १. कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबन्ध २. कुछ चन्दन की, कुछ कपूर की ३. चिन्तन मुद्रा ४. अनुचिन्तन ५. बागला देश के सन्दर्भ में ( रिपोर्ताज ) |
| | ६. स्मरण को पाथेय बनने दो ( संस्मरण ) |
| अनूदित | : १. महात्मा गाँधी का समाज-दर्शन २. उपमा कालिदास्य ३ संकल्प, संत्रास, संकल्प ( बागलादेश की कविताओं का संकलन। ) |
| सम्पादित | : १. दर्शक और आज का हिन्दी रंगमंच २. बालमुकुन्द गुप्त : एक मूल्यांकन ३. तुलसीदास : आधुनिक सन्दर्भ में ४. बागलादेश : संस्कृति और साहित्य |
| शौक | : भ्रमण तथा अच्छी कविताओं को याद करने और सुनने का। |

ग्यारह मुक्तक



बात सच है क्यों करूँ इन्कार
प्रेरणा देता किसी का प्यार।
जो बनाती धूल को भी फूल
पीर वह इन मुक्तकों की धार !!

कह गया मैं क्या, नहीं मालूम मुझको,
बह गया मैं क्या, नहीं मालूम मुझको।
है यही मालूम तुम हो और मैं हूँ
रह गया फिर क्या, नहीं मालूम मुझको ॥

जा रहे तुम, क्या कहूँ, मुझको बताओ,
दूर रहने में सुखी यदि दुख न पाओ।
पीर यह मेरी तुम्हे संवेदना दे,
प्यार मेरा गति बने, यदि लड़खड़ाओ ॥

*क्या प्रकाशित कर सकूँगा उस घुटन को,*
भस्म तिल-तिल कर रही जो उस जलन को।
ढाल शब्दों में सका जिसको न कोई,
प्राण की प्यासी, भोली लगन को ॥

पीड़ा को साहस से तोल नहीं पाता हूँ
गाँठ कुछ पड़ी ऐसी खोल नहीं पाता हूँ।
दिल तो तरसता है कि बोझ जरा हलका हो,
बात कुछ ऐसी है कि बोल नहीं पाता हूँ ॥

रुक गया मैं जिस जगह बस हो गया वह ठाँव मेरा,
हार कर ही जीत पाता जो सदा, वह दाँव मेरा।
हूँ वही पंछी, अकेला ही रहा जो झुँड में भी,
क्या करोगे पूछ कर प्रिय नाम मेरा गाँव मेरा ॥

मज़ा चलने का चलनेवालों से पूछो,
रोशनी क्या है, जलनेवालों से पूछो।
न हल होंगे किताबों में प्रश्न जीवन के
इन्हें तूफान में पलनेवालों से पूछो ॥

मर्द वह है जो उठे कुछ काम करे,
भिड़े तूफान से जग में नाम करे।
न तो वह मर्द है, न औरत ही जो
हाथ प हाथ धरे सुबह को शाम करे ॥

फैले हाथों पर फेंक दी इकन्नी,
तने मुक्कों से काट गये चन्नी।
मनाओगे खैर इस तरह कब तक
उठा रहे हैं सिर रमई मन्नी ॥

माथे पर मनों बोझ
दिमाग़ ख़ाली
घिस रहे क़लम दे रहे गाली।
नये युग के वनमाली ॥

बुद्धिजीवी और काम
राम राम !

## एक गीत

●

अब तक तो चलता ही आया बनी बनायी राह पर
आधा जीवन बिता दिया औरों की नेक सलाह पर !

सच है, बहुत भला कहलाया,
पुरस्कार बहुतों से पाया
पर क्या जीना यही जियो केवल औरों की वाह पर,
सदा लगाओ खामोशी की मुहर हृदय की चाह पर !

ओ मेरी आत्मा के प्रहरी
मुझको आस्था दो तुम गहरी,
करूँ वही जो करना चाहूँ अपने ही उत्साह पर
पीड़ा पी कर भी मुस्काऊँ जग से मिलते दाह पर !! ●

## आइने के सामने



तुम अब भी अच्छे लगते हो मेरे प्रतिबिम्ब !

तुममें अब भी बाकी है सहज सरल उत्साह,
तुममें अब भी हिलोरती है जीवन की चाह,
तुम अब भी हँस सकते हो खूब ठठा कर
तुम अब भी मुस्का सकते चोट उठा कर
अब भी जीवन के प्रति विश्वास नहीं टूटा है
भले लगे आघात सैकड़ों मन का दरपन नहीं अभी टूटा है !

झाँक दूसरो की आँखो में स्नेह जोड़ सकते हो,
चाँदी की चमचमी ठनकती माया हो
या ईर्ष्या की अधसुलगी तिल तिल दहनेवाली आग
दोनो का फन्दा एक साँस में झटक तोड़ सकते हो !

इसीलिए तो नेह हृदय का देकर यह कहता हूँ,
तुम अब भी अच्छे लगते हो मेरे प्रतिबिम्ब !

सच है पक चला चेहरा
पड़ चली ललाट पर रेखाएँ दो, चार
असफल आकांक्षाओ का भार
किन्तु नहीं अवरोह !
हाँ बीत गया कैशोर भावना का स्वप्निल व्यामोह !
हँसी खींचती है अब भी
यद्यपि दिख जाता उसके भीतर का कलुषित द्रोह !

शब्दो का ताने पाल युक्तियो, सिद्धान्तो की नौकाएँ
अब भी लगती तुम्हें पार पहुँचाने के साधन
नही सैर के लिए लक्ष्य तक जाने को करते उनका आवाहन,
ठगे जा चुके कितनी बार
फिर भी तुम्हें बाँध लेता है सपनो का मायाजाल !

तुम दुनियादारी की आँखो में मूरख
अपनो के लिए पराये, उनके काम न आये
ले ले नाम तुम्हारा जाने कितनो ने मुँह बिचकाये !
नहीं जानता क्या होगी परिणति
इस दुनिया में सिरफिरे तुम्हारे जैसे
सिर्फ़ करवाते अपनी दुर्गति !

फिर भी, उस दिन भी माथा ताने रहे अगर तुम
सच कहता हूँ, नही करूँगा गिला
भीगे स्वर में सही, कहूँगा यही
तुम अब भी अच्छे लगते हो मेरे प्रतिबिम्ब !!

शिवकुमार झुनझुनवाला

## शिवकुमार झुनझुनवाला

●

| | |
|---|---|
| जन्म | : एक औद्योगिक घराने में १० अगस्त १९४१ |
| शिक्षा | : बी काम |

नाटकों में गहरी रुचि

१९६१ से अब तक २२ नाटकों में अभिनय। १५ नाटकों का निर्देशन। इनमें २ अंग्रेज़ी और बंगला नाटक भी। दूरदर्शन के ७ नाटकों में भाग, इनमें २ बँगला नाटक भी

एक बँगला फिल्म में अभिनय, वह फिल्म पर्दे तक नहीं पहुँच पाई।

विशेष शौक-फोटोग्राफी। कला अकादमी की ओर से पाँच एकल चित्र प्रदर्शनियाँ आयोजित।

## मुझे भी मिला था प्यार



मुझे भी मिला था प्यार
अपार निस्वार्थ

एक ऐसे शहर
अँधेरे से घर में
दीवारों पर जिसके
उग आये थे पेड़
जहाँ आकर बैठती थीं चिड़ियाएँ
सितारों भरा आकाश देखने,
जिसके दालान की
मुलायम मिट्टी पर
अभी तक छाप है
मेरे पैरों की।

अब
खंडहर हो गया
है वह घर,
अब रहना पड़ता है मुझे
एक लोहे के बने
ठंडे कमरे में,
जिसमें है केवल
एक छोटा-सा दरवाज़ा।
कभी-कभी निकलता हूँ
अँधकार खोने
खोज में,
शायद मिल जाये
प्यार-भरा एक आलिंगन
फिर कहीं। ●

## आती है हँसी मुझे



आती है हँसी मुझे
उन लोगों पर
जो करते हैं दावा
मुझे जान लेने का
मेरे दिल और दिमाग़
की सतहों को
टटोल लेने का
एक किताब की तरह
मुझे पढ़ पाने का !

जान नहीं
पाया हूँ मैं आज तक
खुद अपने आप को,
आदत पड़ गई है
अपने से दूर
दुनिया में लगातार भटकते रहने की । ●

## मुझे सदा से ही लगता रहा है डर



मुझे सदा से ही लगता रहा है डर
ज्यादा सोचने से ।

कभी कभी
जब घर ठण्डी उदास शाम
पिघलने लगती है
रात की गरमी में
और कम होने लगती हैं
दोस्ती और विराग की
दूरियाँ,
तब किसी की
आँखों में खोकर
एहसास-सा होने लगता है
कि इसबार शायद पाऊँगा
एक साथी, एक सार्थक तृप्ति,
और तब दूरियाँ होने लगती हैं
कम-इतनी कम
कि एक तीखी व्यथा शुरू हो जाय ।

पर खुमार हो जाता है नष्ट
सुबह की चौंधियाती रोशनी में
और तुम
जो कल तक थीं अपरिचित
लगने लगती हो अपनी ।

टटोल पाती हो तुम
मुझे भीतर तक
काश ! मैं भी लगा पाता टोह तुम्हारे अन्तस की ।

## वह कोई गूंगी नहीं



वह कोई गूंगी नही
पर कर चुकी है बन्द
बोलना।

यदि कभी बोलती है
तो उसकी सागर सी गहरी
उदास आँखें,
कहती सी लगती हैं
"शरीर को नहीं
हिम्मत हो तो छुओ
अब तक अछूती मेरी आत्मा को
जो थक हारकर

सो गइ है
अँधेरी
कोठरी में,
निकली थी जहाँ
से एक दिन
जगाओ उसे "

एक उदास हँसी हँस
हो जाती है मौन
और मैं भी फिरा लेता हूँ
आँखें
एक कायर की तरह !

## कभी-कभी



कभी-कभी
किसी से मिलकर
फूलों के अंकुर
फूटने लगते हैं
मेरे मन में
लाल, पीले, नीले,
तरह-तरह की
खुशबू लिये ।

सीख लिया है मैंने
उन्हें दबा देना
मिट्टी की तहों में
शायद बनाए रखने के लिए
अपने को शांत ! ●

## वर्षों पहले



वर्षों पहले
तुम आई थीं
मेरे जीवन में
और एक शक्तिशाली
नदी की तरह
मेरी पुरानी
आस्थाओं, नियमों
और शान्ति को तोड़,
बहा ले गई थीं,
काठ के टुकड़े की तरह।

बहुत ही शक्तिशाली थीं तुम।
फोन पर तुम्हारी आवाज़
लोगों के बीच आँखों से
किया गया इशारा
छिपाकर उँगलियों की
टकराहट,
एक अजीब सा उन्माद
भर देता था मुझमें
बहुत मुश्किल से
सँभाल पाता था
अपने आप को।

मैंने तुम्हें केवल
प्यार ही नहीं किया
घृणा भी की बेहद।

तुमने काट दिये थे
मेरे पंख
बहुत सफाई से,
काबू पा लिया था
मेरे समूचे अस्तित्व पर
फिर भी मैं खुश रहा,
क्योंकि उन्माद जो भरा था
मुझ में !

पर ऊब गया था मैं आखिर
जब तुमने चाहा कि
मेरा चिन्तन भी
सीमित रहे तुम तक
और तुम बनी रहो सर्वतंत्र स्वतंत्र
पर एक दिन
तुम खुद ही निकल गईं
मेरे जीवन से
किसी दूसरी डाल पर
बसेरा करने।

अब एक
गहन शान्ति में हूँ
हम दोनों ही बन गए हैं
किसी न किसी समूह के टुकड़े
फिर भी
लगता है कभी कभी
कि वंचित हो गया हूँ !
उन्माद के सुख से

शायद
फिर कभी
हम मिलें
न मिलें। ✿

## कभी-कभी लगता है डर



कभी-कभी लगता है डर
अपने आप से
रोना ही भूल गया हूँ मैं

यह कब हुआ ?
कैसे हुआ ?
आखिर दोष है किसका ?

शायद उम्रका जो बढ़ती गयी लगातार
या उस आकांक्षा का जिसने ढकेल दिया
प्रगति
समृद्धि
और ख्याति की होड़ में

आगे तो बढ़ा
और बढ़ता ही गया
भूल गया
झाँकना अपने भीतर !

रुका जब वर्षों बाद
और झाँका अंतस में
तो जो था पाया
दूसरों के सुख में हँस पाने के संवेदन को
असमर्थ पाया अपने हाथों को
दे पाने में सहारा
किसी के दुख में

बनकर रह गया हूँ मैं
बंदी अपनी ही एषणाओं की जेल में। *

## याद होगा तुम्हें यह दिन



याद होगा तुम्हें यह दिन
जब एक छोटा सा बादल का टुकड़ा
आया था मुस्कुराते हुए
और भिगो गया था हम दोनों को !

हँस पड़े थे हम भी
और पड़ गई थी एक गहरी छाप
तुम्हारे पाँवों की,
मैदान की भीगी मिट्टी पर।

न जाने क्यों
उसके बाद
जब-जब करता चेष्टा
वह बादल
आने की हमारी ओर
आता कहीं से एक ठंडी हवा का झोंका,
और ले जाता उड़ा कर उसे
दूर बहुत दूर।

अब तो मैदान की मिट्टी भी
होने लगी है सख्त
और मिट सी गई हैं
उसमें पड़ी
तुम्हारे पाँवों की छापें।

अब चाहकर भी
कोई बादल
भिगा नहीं पायेगा हमें,
क्योंकि जा रही हो तुम
किसी और बसेरे पर।

जाना है तो जाओ
पर कर जाओ
मैदान पर पड़ी छाप को
फिर से गहरी,
जिससे देखा जा सके
स्वप्न
तुम्हारी वापसी का। ✿

हृदयेश पाण्डेय

## हृदयेश पाण्डेय



जन्म : १ जनवरी १६४३ बलिया, उत्तर प्रदेश,

शिक्षा : एम० ए० ( हिन्दी ), साहित्य रत्न-डिप० जर्नलिज्म० डी० ए० डब्लयू०

अध्यापन के बाद सिनेमा जगत में सहनिर्देशक के रूप में प्रवेश, गीत संवाद-पटकथा लेखन एवं निर्देशक, सर्वोच्च, राष्ट्रीय पुरस्कार स्वर्ण कमल से पुरस्कृत, १६७८ एवं १६७६ में क्रमशः "सफेद हाथी" एवं "शोध" फिल्म के माध्यम से राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति, कृष्ण कन्हैया प्रथम भोजपुरी रंगीन फिल्म का लेखन एवं निर्देशन—अनेक बांगला फिल्मों में गीतों की रचना एवं पटकथा लेखन।

स्वर्गीय अजय कर, सत्यजित रे, मृणाल सेन, तपन सिन्हा, विप्लव रायचौधरी, के साथ कार्यरत।

विशिष्ट आँचलिक भाषाओं के वृत्त कथाचित्र का लेखन

"फिल्म डिवीजन" द्वारा निर्मित फिल्मों का स्क्रीन प्ले, संवाद एवं गीत,

"सात रंग का सूरज" निर्देशन प्रारम्भ

साहित्यिक कृतियाँ—

सुजाता के लिये ( काव्य संग्रह ) १६६६

स्मृतियों के आर-पार ( काव्य संकलन ) १६७०

अँधेरे की बाँहों में क़ैद रोशनी ( कहानी संग्रह ) १६७२

समय खण्ड और टूटी मूर्तियाँ ( कविता संग्रह ) १६७५

सैल्यूलाइड पोयट्री ( कविता संग्रह ) चित्र नाट्य शैली १६७६

चला फूने आधी रात ( उपन्यास ) १६७८

मेंहदी कह मतयी नाटक ( भोजपुरी ) १६७६

"एकेडमी ऑफ हिन्दी" के संस्थापक एवं निर्देशक।

## प्रार्थना



उसके हाथ,
उसके पाँव
उसकी आँखें
अंकुर सी कोमल आवाज़
धमनियों में प्रवाहित
रक्त
आज तक के किये गये
सारे संचित कर्मफल
जिसे चाहो
उसे दे दो
और फिर
वापस बुलाकर
सलीब
पर लटका दो। •

## कविता



अँधेरे सन्नाटे को वेधती
कल कारखानों में,
मज़दूरों की हड्डियों से निकली
दिगन्त व्यापी विस्फोट है कविता

पत्थर की हथेलियों में
दम तोड़ती अपाहिज योजना नहीं
यन्त्रणाओं के प्रसव को सहती
चेतना है कविता

सरोकारों, उठाये गये सवालों
और शब्दों का जामा नहीं
शैतानी वृत्त से मुक्त होती
हवा है कविता

आवश्यकताओं के लिबास में
लिपटी सन्तान है
विसंगतियों के ताने बाने में उलझी
पत्नी है,
फटे हुये आँचल से झाँकती माँ है कविता। •

## कोमल गंध



रोशनी और खौफनाक
अँधेरे के बीच
खड़ा है वह
अस्तित्व बचाने के लिये

सर चढ़कर बोलने वाला जादू
विकलांग मायूसी,
माइक से निकले हुये शब्द
निस्तब्ध हो गये हैं
उसकी पगध्वनि के सामने

एक गंध फैल गयी है
उसके इर्द-गिर्द
पाँव चल पड़े हैं
सही दिशा की तलाश में

तलाश के लिये
न तो रोशनी की जरूरत है
न खौफनाक अँधेरे की
सिर्फ वह है
जो खड़ा है और
अपने मजबूत इरादे पर अड़ा है। *

## सूर्य का उगना



हवा, पानी, बादल, बिजली,
समुद्र का उफनना
बर्फ का जमना
सब कुछ सम्भव है तुम्हारे लिये।

मगर हमारे लिये,
ना हवा है ना पानी
न समुद्र का उफनना
न पर्वतों पर
बर्फ का जमना
वह सब कुछ जो तुम्हारे
विपरीत है
पर हमारे अनुकूल।

अब सब कुछ सम्भव है हमसे
हम जोतते थे, बोते थे
तुम खाते थे
अब तुम जोतोगे, बोवोगे
हम खायेंगे।

तुम सुर्खियों में जी सकते हो,
मगर हम खेतों में जियेंगे
मशीनों की थाप पर
सूर्य का उगना देखेंगे। *

## समय



तुम्हारे अन्तस को छूकर
जो हवा मुझ तक आई
स्पर्श कर मुझे न जाने क्या कुछ कह गयी

ओ प्रिय अनाम !
तुम्हें किस नाम से पुकारूँ !

किन सम्बोधनों के सहारे
इन हवाओं को एक नाम दूँ।

एक रिश्ता जो हवा के संग
उसके अन्तरंग क्षणों को जीकर
मुझ तक आया है
उसपर चंदन का स्पर्श हो जाऊँ,
हवा में निहित कामना की लाली को
कोमल अनुरक्त प्रकम्प दे दूँ!

हवा जब चली होगी
दिशाओं में गुलमुहर खिले होंगे
मानस की लहरों से उठकर
पुरइन के पात पर
धरती
गुनगुनाई होगी।
एक मीठी धुन उकस कर
क्षितिज में इठलाई होगी।
यद्यप क्षणों में बिसर कर
शबनम से नहाई होगी।

ओ मेरे प्रिय सम्बोधन!
सारे ब्रह्माण्ड में तुमने
सूर्य की तेजस्विता वरण कर
वसुमति की कोख को सहलाया होगा
कुछ दिया होगा
कुछ लिया होगा
एक ज्योति जन्मी होगी
याद आयी होगी

ओ मेरे प्रिय सम्बोधन
क्यों न इसे प्रणय कहूँ,
छाप, लय, समय कहूँ। ❁